ISSN: 2456-9186, Vol. I, Issue. I, June-2017

वागर्थः

(An International Journal of Sanskrit Research)

वैशेषिक दर्शन में मन विषयक विश्लेषण

डॉ- सुशीला कुमारी
संस्कृत विभाग
लेडी श्रीराममहाविद्यालय
दिल्ली

शोध-सार - सामान्यतः व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखा जाये तो मन का अर्थ मनन का साधन होता है। किन्तु मन केवल मनन का ही साधन नहीं है अपितु यह तत्त्व सम्पूर्ण ज्ञान की प्रक्रिया के मूल में रहता है, तथा सभी प्रकार के ज्ञानों में इसकी अनिवार्य उपयोगिता बनी रहती है। मानव जीवन में मन का विशिष्ट स्थान है। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः' अर्थात् मन ही मनुष्यों के बन्धन तथा मोक्ष का कारण है, यह उक्ति भी यही चरितार्थ करती है। मानव की समग्र बाह्य चेष्टाओं के पीछे रहने वाली प्रेरक शक्ति मन है। मानव की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था भी मनोमूलक है। मन ही वह साधन है जिससे मनुष्य सोचता है, समझता है, तर्क करता है, इच्छा करता है, विविध वस्तुओं का अनुभव प्राप्त करता है। इन बौद्धिक अनुभवों के अतिरिक्त मनुष्य मन से प्रेम, क्रोध, लोभ आदि संवेगों का भी अनुभव करता है।भारतीय आस्तिक दार्शनिक चिन्तनधारा में मन को करण के रूप में स्वीकार किया गया है एवं आत्मा एवं शरीर से उसकी पृथक् सत्ता स्वीकार की गई है।वैशेषिक दर्शन की मनो-मान्यता का अद्वितीय एवं अमूल्य योगदान है कि सर्वप्रथम इसी दर्शन में 'मन' की सिद्धि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गई है। वैशेषिक दर्शन में मन, शरीर, आत्मा और बाह्य इन्द्रियों से भिन्न एक निरवयव, स्वतन्त्र तथा नित्य द्रव्य है। निखिल ज्ञान का जनक मन, सुख-दुःख, इच्छा, राग-द्वेष तथा स्मृति प्रभृति आन्तरिक अनुभूतियों के साथ-साथ बाह्य इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भावों में भी सहायक है।

मूल-शब्दः आशुसंचारिता, अप्रत्यक्षगम्यता, अचेतनता, परार्थता, उपसर्पण, अपसर्पण, इन्द्रियत्व द्रव्यत्व, नित्यत्व

I. मन का स्वरूप: वैशेषिकेतर मत

पाश्चात्य दर्शन में उपलब्ध मन के विविध नामों यथा- mind, soul, psyche, spiritपर विचार करते हुए मन सम्बन्धी विविध नामों के कारण जैसी अस्पष्टता और उलझन उत्पन्न हुई है, वैसी भारतीय आस्तिक दर्शनों में नहीं है, क्योंकि विभिन्न भारतीयदार्शनिक विचारधारों में मुख्यतः ज्ञान के उपकरण के रूप में मन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

चार्वाक शरीर से अतिरिक्त किसी तत्त्व को नहीं मानते। उनके मत में चैतन्य से युक्त शरीर ही आत्मा है (तच्चैतन्यविशिष्ट देह एवात्मा) [1]।चार्वाकों के अनुसार चैतन्य की उत्पत्ति और विनाश के साधनभूत तथा आधारभूत शरीर से अतिरिक्त जिस प्रकार आत्मा की कोई सत्ता नहीं है, इसी प्रकार मन की भी नहीं है।

जैन दर्शन में मन को सब अर्थों का ज्ञाता कहा गया है। इस विश्व में दो प्रकार के पदार्थ हैं- मूर्त्त तथा अमूर्त्त। इन्द्रियाँ केवल मूर्त्त द्रव्य के वर्तमान पर्याय को ही जानती है। मन मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों के त्रैकालिक अनेक रूपों को जानता है, इसलिए मन को सर्वार्थग्राही कहा गया है। इस दर्शन में मन को इन्द्रिय नहीं कहा गया है इसके कारणों की विवेचना करते हुए कहा गया है कि आत्मा के लिङ्ग को

इन्द्रिय कहते हैं, जिस प्रकार शेष इन्द्रियों का बाह्य इन्द्रियों से ग्रहण होता है, उस प्रकार मन का नहीं होता है, इसलिये इसे इन्द्रिय का लिङ्ग नहीं कह सकते।

बौद्ध दर्शन में देह, बुद्धि से अतिरिक्त मन की सत्ता को स्वीकार किया गया है। द्वादश आयतनों में मन की गणना की गई है।शान्तरक्षित ने चक्षुरादि इन्द्रियों से अतिरिक्त मन की सत्ता को स्वीकार किया है (चक्षुरादि-अतिरिक्तं हि मनो अस्माभिरपीष्यते।)[2]।परन्तु उनके अनुसार वस्तुतः मन तत्त्वविज्ञान से अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

सांख्य सिद्धान्तानुसार प्रकृति का महत् नामक जो कार्य उत्पन्न हुआ है वह मन है (महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः।)।मन की उत्पत्ति का मूल कारण प्रकृति है। मन सूक्ष्म शरीर का एक घटक है।यह संकेत समष्टि मन की ओर है। व्यष्टि मन पृथक् है एवं वह संकल्प-विकल्प करने वाली इन्द्रिय है। मन का सम्पर्क ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों से होने के कारण मन उभयात्मक है (उभयात्मकमत्र म संकल्पमिन्द्रियंच साधर्म्यात्।गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च।)[3]।सांख्य में अहंकार से उत्पन्न होने के कारण मन को अनित्य कहा गया है (प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम्)। इस दर्शन में मन को अणु परिमाण वाला कहा गया है (अणु परिमाणं तत्कृति श्रुतेः।) ।

योग दर्शन में चित्त, मन तथा बुद्धि शब्दों को पर्यायवाची मानकर ही प्रयोग किया है। सम्पूर्ण दर्शन में अन्तःकरण के लिए चित्त शब्द का प्रयोग हुआ है। चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) [4]।व्यासभाष्य में कहा गया है कि विभु चित्त संकोच-विकास गुण से युक्त है, जो धर्मादि निमित्त की अपेक्षा रखता है (वृत्तिरेवास्य विभुः संकोचविकासिनीत्याचार्यः, तच्च धर्मादिनिमित्तापेक्षमिति।)।आचार्य विज्ञान-भिक्षु ने मन के विभुत्व का प्रतिपादन किया है|

वैशेषिक दर्शन के समानतन्त्र न्यायदर्शन में परिगणित बारह प्रमेयों में मन भी एक है (आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिप्रेत्यभाव फलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।) [5] । महर्षि गौतम ने कहा है कि हमारे ज्ञान सदैव क्रमिक ही होते हैं, युगपत् नहीं। इसी से मन की सिद्धि होती है (युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।)।

मीमांसा के दोनों सम्प्रदायों में मन को स्वीकार किया गया है। गुरुमत- मीमांसक भी मन को सुख-दुःखादि के प्रत्यक्ष में करण होने से अन्तरिन्द्रिय स्वीकार करते हैं (मनसो अभ्युपगमे च सकलात्मगुणोदय एव प्रमाणम्। बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नादृष्टसंस्काराणां नवानामपि वैशेषिकगुणानां मनः संयोगेनैवोत्पतेरिति।)[6]।आत्मा को विशेष गुणों का ज्ञान मन के द्वारा ही होता है और यह बाह्य करणों चक्षु, श्रोत्रादि के व्यापारों में भी सहायक है।

अद्वैत वेदान्त में मन अन्तःकरण का ही रूप है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि नामों से व्याख्यात अन्तःकरण ही वृत्तिभेद से सुख-दुःख बन्धन तथा मोक्ष का कारण है (वृत्तिभेदेन मनोबुद्ध्यहंकारचितव्यपदेशभाजनमन्तःकरणमेवसुखदुःखबन्धमोक्षादि सर्वव्यवहारकारणं व्यवहार- मात्रस्यैवान्तः करणवृत्ति विशेष जन्यत्वादित्यद्वैतवेदान्तिनः प्राहु।) [7] ।संशय, निश्चयादि इसके धर्म कहे गये हैं।

ब्रह्मसूत्र भाष्य में मन के इन्द्रियत्व का उल्लेख किया गया है। कुछ वेदान्ती मन के इन्द्रियत्व को स्वीकार नहीं करते परन्तु इसके अन्तःकरणत्व को तो सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं।इस प्रकार मुख्यतः सभी दार्शनिक सम्प्रदायों में मन की मीमांसा उपलब्ध है।

II. मन का स्वरूप: वैशेषिक मत

वैशेषिक दर्शन में मनस्तत्त्व का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुतिकरण किया गया है। इस दर्शन में नौवां एवं अन्तिम द्रव्य मन है। यहाँ पर मन केवल चिन्तन का साधन नहीं, अपितु सुख-दुःख, इच्छा, राग-द्वेष प्रभृति आन्तरिक अनुभूतियों के साथ-साथ बाह्य इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भावों में भी सहायक है। मन सभी इन्द्रियों का प्रवर्तक है। चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियाँ विषय का जो ग्रहण करती हैं, उसे मन ही आत्मा के पास पहुँचाता है। इस रूप में मन, मानव-चेतना का बाह्य जगत् के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने की एक संयोजक कड़ी है। अन्य शब्दों में, जिस प्रकार मानव की ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य जगत् के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में करण का कार्य करती है, उसी प्रकार मानव-चेतना या मानव की आत्मा तक जगत् के विषयों का इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान मन के माध्यम से ही आत्मा को होता है। आभ्यन्तरिक सुख, दुःख आदि का अनुभव सीधे मन के द्वारा ही होता है इस प्रकार मन अन्तरिन्द्रिय तो है ही, बाह्य इन्द्रियों का अनुग्राहक भी है।

III. मन की सिद्धि

वैशेषिक दर्शन में मन की सिद्धि द्रव्य के रूप में की गई है।सूत्रकार कणाद ने मन की सिद्धि में कहा है कि आत्मा, इन्द्रिय तथा अर्थ का सन्निकर्ष होने पर भी कभी ज्ञान का होना और कभी न होना, मन का साधक प्रमाण है (आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोअभावश्च मनसो लिङ्गम्।) [8]।प्रशस्तपाद ने मन की सिद्धि के लिए दो अन्य हेतु भी उपस्थापित किए हैं, यथा-

A. स्मृति का हेतु मन है

श्रोत्रदि के व्यापार के न रहने पर भी स्मृति की उत्पत्ति होती है (श्रोत्रद्यव्यापारे स्मृत्युत्पत्तिदर्शनात्।) [9]।तात्पर्य यह है कि स्मृति भी इन्द्रिय जन्य है क्योंकि वह भी ज्ञान है जैसे कि गन्धादि का ज्ञान। श्रोत्रदि इन्द्रियाँ स्मृति की हेतु नहीं हैंक्योंकि श्रोत्रदि व्यापार के न रहने पर भी बहरे व्यक्ति को भी स्मृति होती है अतः स्मृति का कारण जो इन्द्रिय है वह मन है।

B. सुखादि साधक इन्द्रिय मन है

जिस प्रकार गन्ध ज्ञान का ग्रहण चक्षु से नहीं होता है तो अन्य करण घ्राण का अनुमान किया जाता है। तथा रस ज्ञान का ग्रहण भी चक्षु इन्द्रिय से नहीं होता है तो रसना इन्द्रिय का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार चक्षुरादि बाह्येन्द्रियों से सुखादि विषयों का प्रत्यक्ष नहीं होने से अन्तरिन्द्रिय मन का अनुमान होता है (यथा चक्षुषा गन्धो न गृह्यत इति करणान्तरं घ्राणमनुमीयते। ताभ्याञ्च रसस्यापरिच्छेदाद् रसनानुमानम् ------तद्वद् बाह्येन्द्रियैः सुखादयो न गृह्यन्त इति तत्परिच्छेदकं मनो अनुमीयते।) [10] ।

IV. मन के गुणों का निरूपण

मन के द्रव्य होने में यह भी निमित्त है कि यह गुणों का भी आश्रय हो। तदनुसार, मन में ये आठ गुण स्वीकार किये गये हैं- संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और संस्कार (वेग) (संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वसंस्काराः।)।

A. संख्या

वैशेषिक आचार्य मन को प्रतिशरीर एक तथा संख्या में अनन्त स्वीकार करते हैं। महर्षि कणाद का कथन है कि चूँकि एक काल में (एक आत्मा में) दो ज्ञानों और दो प्रयत्नों की उत्पत्ति नहीं होती है, अतः एक शरीर में एक ही मन है (प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायौगपद्याच्चैकम्)।

B. परिमाण

मन को अणु परिमाण स्वीकार किया गया है। महर्षि कणाद की उक्ति है कि मन विभु न होने से अणु परिमाण से युक्त है (तदभावादणु मनः।)।ज्ञान की युगपद् उत्पत्ति नहीं होती है, अर्थात् सारे ज्ञान क्रमिक ही होते हैं, युगपद् नहीं। अतः मन अणु है। यदि मन विभु होता तो सभी इन्द्रियों से अपने-अपने विषयों से सम्बद्ध होने के कारण एक ही क्षण में अनेक इन्द्रियों के सम्बद्ध रूपादि विषयक अनेक ज्ञानों की उत्पत्ति होनी चाहिए, लेकिन होती नहीं है। अतः मन विभु नहीं, अणु है (विभवाभावश्च ज्ञानाद्ययौगपद्यात्।) [11]।

C. पृथक्त्व

पृथक्त्व भी सामान्य गुण है अतः यह मन में रहता है। प्रशस्तपाद का कथन है कि मन में संख्या गुण होने के कारण पृथक्त्व गुण पाया जाता है (प्रतिशरीरमेकत्वं सिद्धम्। पृथक्त्वमप्यत एव।)। [12]यह नियम है कि जहाँ संख्या होती है वहाँ पृथक्त्व भी होता है।

D. संयोग-विभाग

मन में संयोग-विभाग रूप क्रिया के स्पष्टीकरण हेतु महर्षि कणाद का कथन है कि मन का एक शरीर से 'उपसर्पण' (किसी की ओर जाना) अर्थात् अलग होना एवं दूसरे शरीर में 'अपसर्पण' (लौटना), ये दोनों ही अदृष्ट से होते हैं अतः मन में संयोग-विभाग दोनों गुण रहते हैं (अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि।)।

E. परत्व-अपरत्व

प्रशस्तपाद ने मूर्त्तत्व के आधार पर परत्वापरत्व गुणों की सिद्धि की है (मूर्त्तत्वात् परत्वापरत्वे।)।चूँकि मन मूर्त्त है अतः उसमें भी परत्वापरत्व गुण विद्यमान हैं।

F. संस्कार

प्रशस्पाद ने परत्वापरत्व के समान संस्कार को भी मूर्त्तत्व के आधार पर मन में सिद्ध किया है (मूर्त्तत्वात्परत्वापरत्वे संस्कारश्च।)।

V. मन के विशेष स्वरूप का निरूपण

A. मन का द्रव्यत्व एवं नित्यत्व

प्रशस्तपाद ने भी कहा है कि मन में गुण हैं। अतः वह द्रव्य है (गुणवत्त्वात् द्रव्यम्।)। मन का नित्यत्व सिद्ध करने के लिए इसका परिमाण अणु ही पर्याप्त है, क्योंकि अणु नित्य और निरवयव होता है।

B. मन की अचेतनता

न्यायदर्शन में महर्षि गौतम का कथन है कि परतन्त्र होने से मन चेतन नहीं हो सकता (यथोक्तहेतुत्वात्पारतन्त्र्यादकृताभ्यागमाच्च न मनसः।) । भाष्यकार वात्स्यायन कहते हैं कि मन भी इन्द्रिय और अर्थ के समान अन्य द्वारा निर्दिष्ट और प्रयोज्य होकर ही धारण, प्रेरण और व्यूहन (संग्रह) क्रियाओं में प्रवृत्त होता है। अन्य के प्रयत्न से ही वह अपना व्यापार कर पाता है, अतः उसमें चेतना नहीं है (परतन्त्राणि भूतेन्द्रियमनासि धारणप्रेरणव्यूहनक्रियासु प्रयत्नवशात्प्रवर्तन्ते, चैतन्ये पुनः स्वतन्त्रणि स्युरिति।) ।

C. मन की परार्थता

प्रशस्तपादभाष्य में कहा गया है कि मन करण अथवा इन्द्रिय होने से दूसरे के उपभोग का साधन (परार्थ) है (करणभावात् परार्थम्।)। मन की सत्ता अपने लिए नहीं, अपितु परार्थ होती है।

D. मन की आशुसंचारिता

प्रशस्तपाद ने प्रयत्न और अदृष्ट के कारण मन को तीव्र गति वाला कहा है (प्रयत्नादृष्टपरिग्रहवशादाशुसंचारि चेति।) । किरणावलीकार उदयनाचार्य तथा सेतुकार पद्मनाभ ने शङ्का उठाई गई है कि मन में गुरुत्व, द्रवत्व, स्थितिस्थापक आदि के अभाव में क्रिया (गति) कैसे सम्भव है? इस शङ्काका समाधान इस प्रकार किया गया है कि मन में वेग क्रिया प्रयत्न और अदृष्ट से सम्भव है (गुरुत्वद्रवत्वस्थितिस्थापकाभावे कथं क्रियावत्त्वम्? वेगस्योत्तरक्रियोत्तरकालीनत्वात्तहि मूर्तत्वमात्रेण क्रियेत्यत आह प्रयत्नादृष्टपरिग्रहादिति।क्वचित्प्रयत्नपरिग्रहात्क्वचिददृष्टपरिग्रहादित्थः ।) ।पुनः कन्दलीकार का कथन है कि जिस प्रकार से इच्छा, द्वेष और जीवन योनि यत्न इन तीनों के साथ सम्बद्ध होने के कारण मन क्षिप्रगति से एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है, वैसी ही यह अदृष्ट से प्रेरित होकर मरण के पश्चात् दूसरे शरीर में भी शीघ्र चला जाता है (इच्छाद्वेषपूर्वकेण जीवनपूर्वकेण च प्रयत्नेन परिगृहीतं स्थानात् स्थानान्तरमाशु संचरतिरति, तथा अदृष्टेन परिगृहीतं मरणाच्छरीरान्तरमाशु सञ्चरतीति दृष्टव्यम्)[13]।

E. मन का इन्द्रियत्व साधन

न्याय-वैशेषिक दर्शन में मन को इन्द्रिय माना गया है। यद्यपि गौतम और कणाद ने स्पष्ट रूप से मन के इन्द्रियत्व को कहीं स्वीकार नहीं किया, किन्तु उन्होंने इसका निषेध भी नहीं किया है।

न्याय-वैशेषिक दर्शन मेंमन को इन्द्रिय इसलिए भी इन्द्रिय माना गया कि यह आन्तर प्रत्यक्ष का कारण है। प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है- (क) बाह्य (ख) आभ्यन्तर। बाह्य प्रत्यक्ष, स्पर्श, रूप, रस, शब्द तथा गन्ध के अनुभव से होता है और आभ्यन्तर प्रत्यक्ष मन के सम्पर्क से होता है। पुनः लौकिक प्रत्यक्ष छः प्रकार का कहा गया है- चाक्षुष, रासन, घ्राणज, त्वाच, श्रावण तथा मानस।इसका स्पष्टीकरण प्रत्यक्ष के लक्षण में दिए गए 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नज्ञानम्' अर्थात् इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते है से भी होता है। यदि मन इन्द्रिय न होता तो प्रत्यक्ष के लक्षण के अनुसार सुखादि का प्रत्यक्ष कदापि न होता, किन्तु सुख-दुःखादि का प्रत्यक्ष तो होता ही है। अतः यह अनुमान होता है कि सुख-दुःखादि की प्रतीति अपरोक्ष होने के कारण रूपादि की भाँति इन्द्रियजा है, और वह जो इन्द्रिय है, वह मन है।

अर्वाचीन विद्वानों ने तो स्पष्टतः मन को इन्द्रिय कहा है (सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः।)[14]। परन्तु यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि सुखादि के सन्दर्भ में मन को इन्द्रिय माना जाएगा। चाक्षषादि ज्ञानों की उपलब्धि जो मन के द्वारा आत्मा को कराई जाती है वहाँ पर मन इन्द्रिय नहीं है।

F. मन की अप्रत्यक्षगम्यता

महर्षि कणाद ने स्पष्ट किया है कि मन का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।किसी वस्तु के प्रत्यक्ष के लिए आवश्यक है कि-उसका महत्परिमाण हो,अनेक द्रव्य उसके आश्रय हो,वह रूप का आश्रय हो,वह स्पर्शवद् द्रव्य हो। मन में प्रत्यक्षत्व इसलिए नहीं है कि उसका परिमाण महत् न होकर अणु होता है और वह अनेक द्रव्य का आश्रय भी नहीं होता है साथ ही मन रूप रहित तथा अस्पर्शवद् द्रव्य होता है।

G. मन की हेतुता-बन्धन एवं मोक्ष के विषय में

प्रत्येक मन एक विशिष्ट आत्मा के साथ एक विशिष्ट शरीर में आश्रित होकर सुख-दुःखादि भोग में सहायक होने से इस व्यावहारिक जगत् का कारण है। न्यायमञ्जरीकार का मत है कि सुख आदि के भोग का सम्पादन करता हुआ तथा चञ्चल इन्द्रिय स्वरूप घोड़ों को सारथि बनाता हुआ मन बन्धन का कारण बनता है। इसलिए यत्नपूर्वक यह मन भी हेय अर्थात् त्याज्य है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न दार्शनिक विचारधारों में मुख्यतः ज्ञान के उपकरण के रूप में मन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त सभी शेष दर्शनों ने ज्ञान की प्रक्रिया के मूल में मन को पूर्ण महत्ता प्रदान की गई है।

दार्शनिक सम्प्रदायों में सांख्य एवं योग दर्शन की सुदृढ़ पृष्ठ-भूमि से प्रारम्भ मनस्तत्त्व सम्बन्धी निरूपण अन्ततः अद्वैतवेदान्त की गम्भीर दार्शनिक चर्चाओं में परिणत हुआ है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में वैशेषिक दर्शन की मनो-मान्यता का अद्वितीय एवं अमूल्य योगदान यही है कि सर्वप्रथम इसी दर्शन में 'मन' की सिद्धि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गई है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः वैशेषिक दर्शन में मन, शरीर, आत्मा और बाह्य इन्द्रियों से भिन्न एक निरवयव, स्वतन्त्र तथा नित्य द्रव्य है। निखिल ज्ञान का जनक मन, सुख-दुःख, इच्छा, राग-द्वेष तथा स्मृति प्रभृति आन्तरिक अनुभूतियों के साथ-साथ बाह्य इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाने वाले भावों में भी सहायक है। प्रशस्तपाद ने मन में संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और संस्कार (वेग) नामक गुण बताये हैं।

वैशेषिक आचार्यों ने इसे अचेतन, मूर्त्त, अनारम्भक द्रव्य, आशुसंचारी, इन्द्रिय, निरवयव तथा परार्थ द्रव्य कहा गया है।

मन सुख, ज्ञानादि के भोग के सम्पादन से बन्धन कारण है। किन्तु यही मन मोक्ष का भी कारण है। मन के आत्मा में स्थिर होने पर कर्म के अनारम्भ एवं सुख-दुःखों के अभाव से योग की स्थिति बनती है। इस प्रकार मन की आत्मप्रतिष्ठा ही समाधिलाभ है जो मोक्ष का मार्ग है।

संदर्भ

[1] उमाशंकर शर्मा ऋषि (सं.), 'सर्वदर्शनसंग्रह', चौखम्बासंस्कृत प्रतिष्ठान,वाराणसी,1978,पृष्ठ 4

[2] स्वामी द्वारिकादासशास्त्री (सं.), 'तत्त्वसंग्रहः', बौद्धभारती, वाराणसी,1968, पृष्ठ 209

[3] राकेशशास्त्री(सं.), 'सांख्यकारिका', संस्कृतग्रन्थाकार, दिल्ली, 2004, पृष्ठ 84

[4] सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव(सं.), 'पातञ्जलयोगदर्शनम्', (चतुर्थ संस्करणचौखम्बा सुरभारती प्रकाशन(, वाराणसी, 1998,सू.1/2

[5] श्रीनारायणमिश्र, 'न्यायदर्शनम्', चौखम्बासंस्कृतभवन, वाराणसी, 2007, सू.1/1/9

[6] एस. सुब्रह्मणयम् शास्त्री(सं.), 'प्रकरणपञ्चिका', बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस,1961, पृष्ठ 332

[7] सत्यानन्दसरस्वती (व्या.), 'ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य', चौखम्बासंस्कृतसीरीज, 2013, पृष्ठ 557

[8] अनन्तलाल ठाकुर(सं.), 'वैशेषिकसूत्र', मिथिला विद्यापीठदरभङ्गा,1957

[9] श्रीनारायणमिश्र (सं.), 'प्रशस्तपादभाष्यम्', काशीसंस्कृतग्रन्थमाला, वाराणसी, 1966, पृष्ठ 57

[10] गोपीनाथकविराज व ढुण्ढिराजशास्त्री (सं.), 'प्रशस्तपादभाष्य ('सूक्ति', 'सेतु' एवं 'व्योमवती' टीकाओंसहित)', चौखम्बाअमरभारतीप्रकाशन, वाराणसी, द्वितीयसंस्करण, वि-सं- 2040, पृष्ठ 158

[11] विन्देश्वरीप्रसाद (सं.),' किरणावली', बनारससंस्कृतसीरीज, वाराणसी, 1897, पृष्ठ 102

[12] नारायणमिश्र (सं.), 'प्रशस्तपादभाष्यम्', काशीसंस्कृतग्रन्थमाला, वाराणसी, 1966, पृष्ठ 57

[13] दुर्गाधरझाशर्मा (सम्पादकहिन्दीव्याख्याकार), 'प्रशस्तपादभाष्यम् (पदार्थधर्म- संग्रह) (न्यायकन्दलीव्याख्या-सहितम्)', सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1997, पृष्ठ 226

[14] दयानन्दभार्गव (व्या.), 'तर्कसंग्रह', मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली, 2007, पृष्ठ 54